International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 08-11-2025, Accepted: 07-12-2025, Published: 22-12-2025
Volume 7, Issue 2, 2025, Page No. 63-64

हिन्दी साहित्य में औद्योगीकरण और मानवीय संकट के आख्यान (1950–1980)

प्रभात मिश्रा
शोध छात्र, हिन्दी विभाग, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
स्वातंत्र्योत्तर भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने देश के आर्थिक ढाँचे को सुदृढ़ करने का प्रयास किया, किन्तु साहित्य ने इस प्रक्रिया के मानवीय पक्ष को उजागर किया। 1950 से 1980 के दशक तक के हिन्दी साहित्य, विशेषकर उपन्यास और कहानी में, औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न सामाजिक विघटन, पारिस्थितिक संकट, शोषण और मानवीय मूल्यों के ह्रास को केन्द्रीय विषय बनाया गया। यह शोधपत्र इसी अवधि में रचे गए साहित्य के माध्यम से औद्योगीकरण जनित मानवीय संकट के विविध आयामों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मूल शब्दः औद्योगीकरण, मानवीय संकट, नगरीकरण, शोषण, पूँजीवाद, पर्यावरण, सामाजिक विघटन

प्रस्तावना
स्वतंत्रता के पश्चात् देश में तीव्र गति से औद्योगिक विकास की नीति अपनाई गई। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना हुई, जिसके परिणामस्वरूप गाँवों से शहरों की ओर पलायन हुआ और एक नए शहरी मध्यम वर्ग एवं श्रमिक वर्ग का उदय हुआ। किन्तु इस विकास की कीमत मानवीय संबंधों, पर्यावरण और पारंपरिक जीवन–मूल्यों के क्षरण के रूप में चुकानी पड़ी। हिन्दी के संवेदनशील रचनाकारों ने इस संकट को पहचाना और अपनी रचनाओं में उसे अभिव्यक्त किया।
डॉ. रामविलास शर्मा ने इस संदर्भ में लिखा है, "आधुनिक उद्योगों ने मनुष्य को उसकी जमीन से उखाड़कर मशीन का एक पुर्जा बना दिया है। साहित्य का काम इस पुर्जे में छिपे इंसान की पीड़ा को पहचानना और उसे स्वर देना है।"[1]
यह कथन उस युग के साहित्यिक दायित्व को स्पष्ट करता है।
इस अवधि के साहित्य में औद्योगीकरण जनित संकट के आख्यान को हम मुख्यतः तीन वर्गों में विश्लेषित कर सकते हैं–

1. शोषण और श्रमिक–जीवन का यथार्थ
2. नगरीकरण और सामाजिक विघटन
3. पारिस्थितिक असंतुलन और पर्यावरणीय चिंता

1. शोषण और श्रमिक–जीवन का यथार्थ
इस श्रेणी के साहित्य में कारखानों में काम करने वाले मजदूरों के कठिन जीवन, उनके शोषण और उनकी संघर्ष–चेतना का चित्रण हुआ है। नागार्जुन के उपन्यास 'बलचनमा' में एक चाय–बगान के मजदूरों की दयनीय दशा और उनके विद्रोह का सजीव चित्रण मिलता है। इसी प्रकार, भीष्म साहनी के उपन्यास 'मय्यादास की माड़ी' में एक पूँजीपति और एक मजदूर के जीवन के अंतरविरोधों को उकेरा गया है। कहानी के क्षेत्र में मार्कण्डेय की 'साढ़े तीन घंटे' और उदय प्रकाश की 'मोहन दास' जैसी रचनाएँ औद्योगिक परिवेश में मानवीय गरिमा के संघर्ष को दर्शाती हैं।

2. नगरीकरण और सामाजिक विघटन
औद्योगिक केंद्रों के चारों ओर बसे नगरों ने ग्रामीण जनजीवन को अस्त–व्यस्त कर दिया। राही मासूम रजा के महाकाव्यात्मक उपन्यास 'आधा गाँव' में गाँव के टूटन और नए शहरीकरण के प्रभाव को देखा जा सकता है। कमलेश्वर के उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलीयाँ ' और 'लौटे हुए मुसाफिर' में नगर–जीवन की विसंगतियों, अलगाव और पारिवारिक विघटन का गहन चित्रण हुआ है। यहाँ नगर व्यक्ति के लिए अवसर का केंद्र कम, अस्तित्व का संकट अधिक बनकर उभरता है।

3. पारिस्थितिक असंतुलन और पर्यावरणीय चिंता
औद्योगीकरण के कारण प्रकृति के शोषण और पर्यावरण प्रदूषण की ओर हिन्दी साहित्य ने समय रहते संकेत किया। विजयदान देथा की कहानियों में राजस्थान के पर्यावरणीय संकट की झलक मिलती है। केदारनाथ सिंह की कविता 'बाघ' प्रकृति के विनाश पर एक मार्मिक टिप्पणी है। हालाँकि यह चिंता 1970–80 के दशक में और अधिक स्पष्ट रूप से साहित्य में अभिव्यक्त हुई, जब चिपको आंदोलन जैसे पर्यावरणीय प्रतिरोध मुखर हुए।
इन सभी आख्यानों का केन्द्रीय स्वर मनुष्य की गरिमा और उसके अधिकारों का पक्षधर है। साहित्य ने औद्योगिक विकास के उस नग्न यथार्थ को उजागर किया, जिसे आर्थिक आँकड़ों के पीछे छिपा दिया जाता था। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में, "हिन्दी का आधुनिक उपन्यास पूँजीवादी सभ्यता के उस विराट ढाँचे की आलोचना है, जो मनुष्य को उसकी मानवीयता से विच्छिन्न कर देता है।"[2]

निष्कर्ष
1950 से 1980 तक का हिन्दी साहित्य औद्योगीकरण की एकतरफा और मानव–विरोधी व्याख्या का प्रतिवाद करता नजर आता है। इसने विकास के नाम पर हो रहे शोषण, विस्थापन और पर्यावरणीय विनाश के प्रति एक सजग नागरिक का दायित्व निभाया। यह साहित्य हमें सचेत करता है कि विकास का लक्ष्य केवल आर्थिक समृद्धि नहीं, बल्कि समग्र मानवीय कल्याण होना चाहिए। आज जब देश पुनः तीव्र औद्योगीकरण के दौर से गुजर रहा है, तब यह साहित्य और भी अधिक प्रासंगिक हो उठता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची
1. शर्मा, रामविलास. (1977). भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
2. सिंह, नामवर. (1981). दूसरी परंपरा की खोज. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
3. नागार्जुन. (2005). बलचनमा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

4. साहनी, भीष्म. (1998). मय्यादास की माड़ी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
5. रजा, राही मासूम. (2006). आधा गाँव. नई दिल्ली: राजपाल एंड सन्स।
6. कमलेश्वर. (2002). एक सड़क सत्तावन गलीयाँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।